मनु शर्मा

कृष्ण की आत्मकथा

॥ प्रलय ॥

प्रभात

कृष्ण की आत्मकथा-८

प्रलय

मनु शर्मा

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

आत्मकथ्य

मुझे देखना हो तो तूफानी सिंधु की उत्ताल तरंगों में देखो। हिमालय के उत्तुंग शिखर पर मेरी शीतलता का अनुभव करो। सहस्रों सूर्यों का समवेत ताप मेरा ही ताप है। एक साथ सहस्रों ज्वालामुखियों का विस्फोट मेरा ही विस्फोट है। शंकर के तृतीय नेत्र की प्रलयंकर ज्वाला मेरी ही ज्वाला है। शिव का तांडव मैं हूँ; प्रलय में मैं हूँ, लय में मैं हूँ, विलय में मैं हूँ। प्रलय के वात्याचक्र का नर्तन मेरा ही नर्तन है। जीवन और मृत्यु मेरा ही विवर्तन है। ब्रह्मांड में मैं हूँ, ब्रह्मांड मुझमें है। संसार की सारी क्रियमाण शक्ति मेरी भुजाओं में है। मेरे पगों की गति धरती की गति है। आप किसे शापित करेंगे, मेरे शरीर को? यह तो शापित है ही—बहुतों द्वारा शापित है; और जिस दिन मैंने यह शरीर धारण किया था उसी दिन यह मृत्यु से शापित हो गया था।

एक

हस्तिनापुर जाते हुए पता चला कि सात्यकि द्वारका में बैठा है। मैंने बहुत अनुमान लगाया। दुर्वासा के शाप के धुएँ से मेरे मन की आँखें कड़ुवाने लगीं। किंतु ऋषि के शाप पर हमारा क्या वश! जो होना है, वह होकर रहेगा। फिर उसपर अधिक सोचना क्या! जब मैं कालिय के फन पर वंशी बजा सकता हूँ तब मुझे इस महानाश की संभावना पर भी वंशी बजानी चाहिए। चिंताहीन होकर मरना चिंतित होकर जीने से लाख गुना अच्छा है। बुद्धि ने ही मन को सँभाला और उसे तनाव की कसी डोर से धरती पर उतारा। तब वह प्रकृति के साथ नाच उठा। आकाश के नाचते मेघ तथा नदियों के उमड़ते यौवन ने उसमें उन्माद भरा और वंशी बजाने लगा। प्रकृति के इस महोत्सव में मैं भी सम्मिलित हो गया।

रास्ते में मैंने कई स्थानों पर देखा कि आदिवासी स्त्रियाँ गाते हुए अन्न की रोपाई कर रही हैं। उन्हें कोई आकांक्षा नहीं, इसलिए कोई चिंता नहीं, भय नहीं। वे हमारे रथों के पहियों को गुरते देखकर मुसकराती हुई खड़ी हो जाती थीं। ऐसी निर्दोष मुसकराहट मेरे पास नहीं। यह तो उन्होंने अपने चारों ओर बिखरी प्रकृति से ली है। जीवन भर मुसकराते रहने के बाद भी मेरी मुसकराहट में ऐसी उन्मुक्तता नहीं—और न वैसी निश्चिंतता थी। मेरी मुसकराहट तो बहुधा बुद्धिजन्य होती थी—ऊपर से ओढ़ी हुई। उनकी मुसकराहट भीतर से निकली थी; जैसे पर्वत के हृदय से फूटकर कोई झरना निकले।

तब क्यों नहीं मैं भी उन्हीं आदिवासियों के साथ हो जाऊँ, नाचूँ, गाऊँ, उत्सव मनाऊँ? पर मन बोल पड़ा—'यह तुम क्या सोचने लगे? जन्म के पूर्व से ही मनुष्य अपने कर्मों की शृंखला से आबद्ध है। पर संसार की दृष्टि हमारे कर्मों पर कम और उसके प्राप्त फल पर अधिक होती है। इसीलिए लोग कहते हैं कि जन्म के साथ मनुष्य का भाग्य उसके कपाल पर लिख दिया जाता है। वस्तुतः वह भाग्य नहीं, उसका कर्मफल है। परमात्मा ने हर व्यक्ति को किसी विशेष कर्म के लिए बनाया है। तुम्हें भी कुछ कर्मों का लंबा दायित्व मिला है। तुम अपना कर्म करो, वे आदिवासी स्त्रियाँ अपना कर्म कर रही हैं।'

जब मैं द्वारका पहुँचा, हर बार की तरह मेरी अगवानी हुई; पर इस अगवानी में प्रसन्नता से अधिक जिज्ञासा थी। हर व्यक्ति यह जानना चाहता था कि संजय से क्या बातें हुईं? क्या पांडवों को उनका राज्यभाग सरलता से मिल जाएगा?

मेरा उत्तर होता—"हम जहाँ खड़े थे वहीं खड़े हैं। इससे अधिक मेरे पास कहने को कुछ नहीं है।" आपको विश्वास नहीं होगा कि मेरी प्रतीक्षा कर रहे सात्यकि ने भी अपनी समस्या व्यक्त करने के पहले इसी प्रकार के प्रश्न पूछे। जबकि मेरी जिज्ञासा उसके आगमन को लेकर अधिक थी।

वहाँ से सात्यकि मेरे साथ हो गया। उसने बताया—"कृतवर्मा के सेनापति की हत्या हो गई।"

"यह कैसे हुआ?"

"यही तो कुछ ज्ञात नहीं है। एक प्रभात उसका शव उद्यान में पड़ा पाया गया; पर तन पर कहीं चोट का निशान नहीं था। उसका शरीर नीला अवश्य पड़ गया था।"

''हो सकता है, उसे साँप ने काटा हो।'' मैंने कहा।

''पर लोग इसपर विश्वास ही नहीं कर रहे हैं। प्रचार तो यह हो रहा है कि यह कृत्य वृष्णियों का है और सेनापति की हत्या में मेरा हाथ है।''

ज्ञातव्य है कि कृतवर्मा अंधक था और सात्यकि वृष्णि। दोनों में अनबन भी थी। इसी आधार पर इस अफवाह को बड़ी हवा मिली।

मैंने मुसकराते हुए सात्यकि से कहा, ''तब तो उसे सर्प से अधिक संदेह के सर्प ने काटा है—और यह भी हो सकता है कि दुर्वासा के शाप का विष रेंगने लगा हो।''

''आपका अनुमान सत्य ही है; पर उसकी हत्या के कारण का तो पता चलना चाहिए।'' सात्यकि बोला, ''मुझे तो लगता है कि उसकी हत्या के पीछे कृतवर्मा के पुत्र हृदीक का हाथ है; क्योंकि उससे उसकी कभी नहीं पटती थी।''

''यदि इस हत्या के मूल में हृदीक है तब उसने ही विष देने की योजना बनाई होगी।''

''सुना है, इसके पहले की संध्या को हृदीक ने एक भोज दिया था, जिसमें सेनापति भी था।''

''तब तो मेरी आशंका और भी पुष्ट होती है। तब तुम्हें अपने गुप्तचरों से वास्तविकता का प्रचार कराना चाहिए।'' मैंने सात्यकि से कहा, ''लोगों के संदेह की दृष्टि तुम्हारी ओर से मुड़ जाएगी।''

''आप क्या समझते हैं, हम लोगों ने वैसा किया नहीं!'' उसने बताया—''पर लोगों के मस्तिष्क पर दुर्वासा का शाप ही छाया है।''

''छाने दो। संदेह की कोई ओषधि नहीं है।'' मैंने कहा, ''यह तो एक-न-एक दिन होना ही है। दुर्वासा के शाप की चिनगारी ठंडी नहीं पड़ेगी। वह कभी-न-कभी भभकेगी ही।''

''फिर हमें क्या करना चाहिए?'' सात्यकि ने पूछा।

''हमें सावधान रहना चाहिए और हर यादव वर्ग को सावधान करना चाहिए।'' मैंने कहा, ''और कहना चाहिए कि आपके मन में उठा सारा संदेह किसी और कारण नहीं, केवल दुर्वासा के शाप के कारण है।''

''यह तो एक स्थायी बात हुई।'' सात्यकि बोला, ''हृदीक तो खुल्लम-खुल्ला कह रहा है कि उस निर्दोष की हत्या सात्यकि ने कराई है। इसपर हमें क्या करना चाहिए?''

''उससे इसका प्रमाण पूछना चाहिए।''

''आप स्थिति समझ नहीं पा रहे हैं। कृतवर्मा भी यही कह रहा है। जब पिता-पुत्र दोनों प्रचार कर रहे हैं तब कौन प्रमाण माँगेगा? अब यदि कल वह हमपर चढ़ाई कर बैठे तो हम एक अनिवार्य और अनिच्छित युद्ध की चपेट में आ जाएँगे।''

''तब एक काम करो।'' मैंने सात्यकि को सलाह दी—''तुम जाकर प्रचारित करवा दो कि मैं द्वारकाधीश के यहाँ गया था। उनका कहना है कि मैं यदि किसीको मुशल दूँगा तो वह कृतवर्मा को ही। जब उस मुशल से यादवों का नाश ही होना है तो वृष्णि क्या, अंधक क्या! तो उसका मस्तिष्क तुम्हारी ओर से हटकर मेरी ओर लग जाएगा और तुम एक संभावित युद्ध से बच जाओगे। इसका खयाल रखो कि हम एक भयंकर युद्ध के निकट हैं। हमें उसके लिए सारी शक्ति सँजोकर रखनी चाहिए।''

सात्यकि मेरा संदर्भ समझ गया। उसने पूछा, ''क्या आप समझते हैं कि पांडवों और कौरवों में युद्ध अनिवार्य है? आपने लोगों से इस विषय में कहा है कि हम जहाँ पहले खड़े थे वहीं आज भी खड़े हैं।''

मैं मुसकराया। मैंने कहा, ''सत्य यही है कि मैं पहले जहाँ खड़ा था, आज भी वहीं खड़ा हूँ। एक बिंदु पर खड़े